देव के काव्य में राग और वैराग्य की अभिव्यक्ति

रमेश एच. चौधरी

Received: April 13, 2019 Accepted: May 20, 2019

मनुष्य जीवन सुख-दुःख, हर्ष-शोक, राग-द्वेष, संयोग-वियोग, राग-वैराग्य इत्यादि मनोभावों का समन्वय है। परिवर्तन संसार का नियम है, जो मनुष्य-जीवन में ज्यों-का-त्यों लागु पडता है। मनुष्य जीवन कभी एक ही लय में, एक ही राग में या एक ही ताल में नहीं चल सकता। यह एक एसा प्रवाह है जो निरंतर बहता हुआ अनवरत् निज-मस्ती में चलता रहता है। मनुष्य अपने जीवन में कभी सुख का अनुभव करता है तो कभी दुःख उसे घेर लेता है। कभी हर्ष मनाता है तो कभी शोक-मग्न हो जाता है। कभी राग में मन लगाता है तो कभी वैराग्य को अपनाता है। कुछ भी हो, जीवन के ये विरोधाभासी भाव उसे विविध रंगों से भर देते हैं। सुख और दुःख जैसे भावों की जीवन में अनिवार्यता सिद्ध करते हुए किसी ने ठीक ही कहा है, -

"Life is good because it is Painful"

कवि का धर्म मनुष्य-जीवन के इन मनोभावों को बडी तटस्थता और पवित्रता के साथ अभिव्यक्त करना है। आचार्य कवि देव ने एक सच्चे कवि के लक्षण इन शब्दो में बताये हैं, -

"जाके न काम न क्रोध बिरोध न लोभ छुवै नहिं छोभ ही छाहौ।
मोह न जाहि रहै जग जाहिर मोल जवाहिर तो अति चाहै।।
बानी पुनीत ज्यों देव धुनी रस आरद-सारद के गुन गाहौ।
सील ससी छवित सविता कविताहि रचै कविताहि सराहौ।।"[१]

कवि देव आचार्य कवि थे और इसलिए उन्होंने अपने पदों में अनुराग एवं वैराग्य जैसे सूक्ष्म भावों को बड़ी सजीवता के साथ अभिव्यक्त किया है।

अब हम कवि देव के पदों में राग और वैराग्य की अभिव्यक्ति को देखेंगे......

कवि के काव्य में रागानुभूति की अभिव्यक्ति :

अनुराग या प्रेम श्रृंगाररस का स्थायीभाव है। इसलिए रागनुभूति की चर्चा करने से पहले श्रृंगाररस को जांचना-परखना आवश्यक है। कवि देव ने अपने ग्रंथो में श्रृंगार का वर्णन अत्यंत प्रभावोत्पादक ढंग से किया है। कवि देव का श्रृंगार वर्णन नायक-नायिका के पारस्परिक प्रेम या अनुराग से परिपूर्ण है। श्रृंगार के दो पक्ष हैं - संयोग और वियोग। किन्तु श्रृंगार के संयोग और वियोग के अतिरिक्त कवि देव ने नायक-नायिका के पारस्परिक प्रेम की भी अत्यंत मार्मिक व्यंजना की है। अंत: आचार्य कवि देव की कविता में रागानुभूति को समजने के लिए हमें तीन बातों की और ध्यान देना होगा...

(अ) संयोगानुभूति :

रागानुभूति की सर्वप्रथम शर्त है, संयोग। नायक-नायिका का जब तक संयोग या मिलन नहीं होता तब तक अनुराग अधुरा ही समझा जायेगा।

आचार्य कवि देव ने श्रृंगार के मनोवैज्ञानिक एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन किये हैं। उनका यह पद द्रष्टव्य है, -

"गौने के चार चली दुलही गुरु लोगन भुषन भेष बनाए।
सील सयान सिखन सिखाये बडे सुख सासुरे हु के सुनाए।।
बोलियो बोल सदा हंसि कोमल, जे मनभावन के मन भाए।
औं सुनि ओछे उरोजन पै अनुराग के अंकुर से उठि आए।।"[२]

अर्थात् नववधू का गौना होकर जा रहा है। गुरुजनों द्वारा वह भूषणों-वस्त्रों से अलंकृत की गई है। सखियाँ उसे शील सयान की शिक्षा देती हैं और साथ ही ससुराल के अनेक सुखों की चर्चा करती है। इसी बीच देव कवि कहते हैं कि एक सनि ने जब धीरे से उसके कान में यह कहा कि एसी वाणी बोलना जो मनभावन को अच्छी लगे, तो यह सुनते ही उसके ओछे (छोटे) उरोजों पर अनुराग के अंकुर उभर आये। इस प्रकार वास्तविक मिलन दूर होने के बावजूद मानसिक धरातल पर नायिका में चेतना उत्पन्न हो जाती है। मन के साथ शरीर का सम्बन्ध जोडते हुए कवि ने अपने सूक्ष्मातिसूक्ष्म मनोवैज्ञानिक ज्ञान का परिचय कराया है। तो एक ऐसा ही शब्दचित्र अन्यत्र भी मिलता है, जिसमें नायक-नायिका के अंग, मन, वस्त्र, चेष्टा आदि के साथ-साथ मादकतापूर्ण वातावरण का अत्यंत सूरम्य बिम्ब भी खडा हुआ है। देखिए ...

"सहर सहर सोंधो सीतल समीर डोले, घहर घहर घनघोर के घहरिया।
झहर झहर झुकि झीनी झर लायौ देव, छहर छहर छोटी बूंदन छहरिया।
हहर हहर हँसि के हिंडोरे चढी, थहर थहर तनु कोमल थहरिया।
फहर फहर होत पीतम को पीत पट, लहर लहर होत प्यारी को लहरिया।"[३]

अर्थात् राधा-कृष्ण हिंडौले पर झुल रहे हैं। सौंधी पवन के झोंके पर झोंके आ रहे हैं, घहर-घहर पर घन घिर कर घटा-सी छा रही है, झीनी-झीनी बूंदों की झडी झर रही है। राधा भी कृष्ण के साथ झुले पर चढ़ गई। उसका कोमल शरीर नायक के स्पर्श से कम्प प्रकट करने लगा और दोनों झुलने लगे। झुलते समय कृष्ण को पीताम्बर की फरफराहट और औढ़नी का लहराना- के साथ नायक-नायिका के संयोग का प्रसंग बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया गया है।

इस प्रकार आचार्य कवि देव ने संयोगानुभूति के मनोवैज्ञानिक मार्मिक एवं शब्द-ध्वनिचित्र अंकित किये हैं।

(ब) वियोगानुभूति :

मध्यकालीन कवियों ने प्रायः संयोग की अपेक्षा वियोग का वर्णन अधिक मात्रा में किया है। कवि देव ने भी जितनी सूक्ष्मता और तन्मयता से संयोग का वर्णन किया है, उतनी ही सूक्ष्मता से वियोग की विभिन्न मनोदशाओं का वर्णन भी अपनी कविता में किया है। कवि देव के द्वारा चित्रित वियोग के तीव्र ताप में तडपती हुई और विरहवेदना से जल बिन मछली की भाँति व्याकूल विरहिणी दशा को देखिए,

"बालम-बिरह जिन जान्यो न जनम भरि, बरि-बरि उठे ज्यों-ज्यों बरसे बरफ राति।
बीजन डुलावत सखी-जन त्यों सीत-हूँ मैं, सौंति के सराप, तन-तापन तरफराति।
देव कहैं सांसन ही अंसुआ सुखात, मुख, निकसै न बात, एसी सिसकी सरफराति।
लौटि लौटि परति करौंट करौंट खाट-पाटी लै लै, सुखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति।"[१८]

तो एक स्थान पर कवि देव ने अत्यंत मार्मिक ढंग से विरहावस्था का कारुणिक दृश्य उपस्थित कर दिया है। कवि ने पृथ्वी-जल-तेज-वायु-आकाश जैसे पंचमहाभूतों से निर्मित विरहणी के शरीर में विरहव्यथा के द्वारा मरणावस्था की स्थिति दिखाई है। कवि कहते हैं, -

"सांसन ही सौं समीर गयो अरु आँसुन ही सब नीर गयौ ढरि।
तेज गयो गुन ले अपनों अरु भूमि गई तनु की तनुता करि।।
जीव रह्यो मिलबेई की आस कि आस हू पास अकास रह्यौ भरि।
जा दि तें मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियौ जु लियौ हरि जू हरी।।"[९]

अर्थात् मुंह घुमाकर किंचित मुस्कराकर जिस दिन से कृष्ण ने हृदय लिया है, उस दिन से पंचतत्व विनाश को प्राप्त हुए हैं। उसासें लेते-लेते वायु का विनाश हुआ। अश्रुधारा के अविरल प्रवाह से जल भी नहीं रहा, तेज भी अपने गुण सहित बिदा हो गया। शरीर इतना कृश हो चुका है कि उसके हल्केपन को देखकर जान पडता

है कि पृथ्वी तत्व का अंश भी निकल चुका है, अब तो केवल शुन्य आकाश ही चारों ओर भर रहा-सा प्रतित होता है। नायिका कृशांगी हो गई है। आकाश तत्व की स्थिति भी शरीर में कहीं नहीं, उसके चारों और दिखती है। यह सब होने पर भी प्राण-मिलन की आशा में अटके हुए हैं क्योंकि आशा जीवन है। इस प्रकार कवि के इस वर्णन में गम्भीरता एवं स्वाभाविक्ता के साथ-साथ भावों का चित्रण अन्यत्र दुर्लभ ही है।

(क) प्रेमानुभूति :

जैसे कि आगे कहा जा चुका है कि श्रृंगार का मूलाधार प्रेम ही है। प्रेम सम्पूर्ण विषय-वासनाओं से परे है। प्रेम में सात्विकता का प्राधान्य रहता है। अत: काम या रति भले ही श्रृंगार के स्थायी भाव हों किन्तु मुलाधार के रूप में प्रेम ही सर्वोपरि है।

प्रेमानुभूति के अंतर्गत कवि देव ने सर्वप्रथम स्थान रूपवर्णन को दिया है। नायक के रूप पर मोहित नायिका अपनी विवशता का वर्णन करते हुए अपनी सखि से कहती है, है सखि, मेरी ये आंखे कृष्ण पर पडते ही प्रेम विवाह बहती चली गई। एसा लगा मानो वे निराधार हो धार में धंसते ही प्रवाह में फंसने लगी और शील-संकोच आदि उन्हें अगाध प्रेम-पयोधि में गिर पडी। लज्जा, कुल-कानि आदि ने उन्हें घेरकर सब तरह से उधर जाने से रोकना चाहा पर वे न रोकी जा सकीं। कृष्ण के रुप शहद पर पडते ही मेरी आंखें मधुमक्खी की भाँति विवश हो गई उसके पंख चिपक गए। अब प्रयत्न तथा शक्ति लगाने पर भी वे वहाँ से उड़कर अपनी और लौटने में असमर्थ हो गई। देखिए....

“धार में धाई धंसी निरधार हवै जाइ फंसी उकसी न उधेरीं।
री अँगराय गिरीं गहरी गहि फेरे फिरीं न घिरीं नहि धेरीं।
'देव' कछू अपनो बस ना रस लालच लाल चिते भई चेरी।
बेगि ही बूडि गई पखियाँ अंखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी।।”[६]

यहाँ शहद पर बैठी मक्खी की विवशता से नायिका की आँखो की विवशता की तुलना कर कवि ने रागानुभूति को सफलतापूर्वक व्यक्त किया है।

अन्यत्र एक स्थान पर कवि ने कृष्ण-प्रेम की मादकता को व्यक्त किया है। नायिका कृष्ण के सांवलेपन को अपनी दैहिक संपत्ति या आभुषण बना लेना चाहती है। उसका (कृष्ण) सांवलापन उसने शीश में बसाया। उसके सांवलेपन को कंचुकी में चोआ के रूप में चुपडना और इस प्रकार हृदय के निकट अहर्निश बनाये रखना वक्ष में भर लेना, मखतुल मलमल या काली रेशम में गुहे गहनों के रुप में गले में चिपकाये रखना और मूर्त रूप श्रृंगार का आस्वादन करते रहना, नयनों में अंजन रूप में आँज लेना इत्यादि व्यापारों का बड़ा ही सजीव प्रेमव्यंजना से पूर्ण चित्र देखिए...

"देव में सीस बसायौ सनेह के माल मृगम्मद बिन्दु कै भख्यौं।
कंचुकी में चुपरौ करि चौआ लगाइ लियो उर सौं अभिलाख्यौ।।
कै मखतुल गुहे गहने रस मूरतिवन्त सिंगार के चाख्यौं।
सांवरे लाल को सांवरो रुप में नैनन में कजरा करि राख्यौ।।”[७]

इस प्रकार यहाँ नायिका नायक को सम्पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लेना चाहती है। इतना ही नहीं कवि ने नायिका को संन्देश में अत्यंत अफसोस जताती हुई चित्रित की है। एक पद में राधा कृष्ण के प्रति प्रेमवश होकर प्रेम सन्देश भेजती हुई कहती है, “है व्रजनाथ, मैंने जो भी अपराध किये हों उन्हें क्षमा करें। मेरी दशा यह है कि मेरे कान क्षणभर के लए भी तुम्हारी बजायी बंसी की तानें भुलते नहीं और न नेत्र तुम्हारे उस रूप को क्षणभर भी अलग होने देते हैं जिसे उन्होंने जी भरकर पिया है, पान किया है। हे दयानिधी ! तुम यह जानते होंगे कि मैने अपने छोटे से संकीर्ण हृदय में दिन-रात तुम्हीं को बसाये रखा है परन्तु मैं ही एसी असाधु (बुरी) हूँ जो कभी अर्ध पल के लिए भी तुम्हारे अगाध और विशाल विस्तीर्ण हृदय में बस पाने का सौभाग्य प्राप्त न कर सकी।“ कवि देव इस भाव को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं ....

"राधे कही है कि ते छमियो ब्रजनाथ जिते अपराध किये मैं।
कानन तान न भूलत नाखिन अँखिन रूप अनुप पिये मैं।
ओछे हिय अपने दिन-राति दयानिधि देव बसाय लिये मैं।
हौं ही असाधु बसी न कहूँ पल साधु अगाध तिहारे हिये मैं।"[८]

यहाँ नायिका स्वयं को उपालंभ देकर कृष्ण के प्रति प्रेम जताती है।

इस प्रकार कवि ने श्रृंगार के मूलाधार प्रेम को काम-वासना से भी ऊँचा बताया है और प्रेम के शुद्ध सात्विक चित्र अंकित किये हैं। कवि देव ने "प्रेमहीन त्रिय वेश्या है सिंगाराभास" कहकर प्रेमहीन श्रृंगार निरूपण कामुकता का धोतक होने के कारण श्रृंगारभास ही कहलायेगा तथा वह नारी जिसके माध्यम से प्रेमहीन श्रृंगारवर्णन किया गया है वह वैश्या ही कहलायेगी। अंततः कह सकते हैं बिना प्रेम के श्रृंगार सर्वथा निरस है।

कवि देव के काव्य में वैराग्यानुभूति :

आचार्य कवि देव एक श्रृंगारिक कवि हैं। राग के आधिन होकर उन्होंने अपने साहित्य में अनेक पद प्रेम या राग विषयक लिखे हैं। कहते हैं कि किसी भी बात में या कर्म में अति का प्रवेश होता है तो उससे वैराग्य होने लगता है। राग की अतिशयता के कारण ही शायद कवि देव में वैराग्य भावना उत्पन्न हुई होगी। एक मनोवैज्ञानिक सत्य यह भी है कि सांसारिक व्यक्ति विषयभोगों में लीन होकर जब अतिशय राग की और उन्मुख होता है तो उस तीव्रता से थक कर वैराग्य के रस में परिणित हो जाता है। एक जगह पर बाबु गुलाबराय ने भी इस सत्य को स्वीकार किया है, - "देव श्रृंगार के सुमधुर कवि हैं। उनके काव्य में संयोग श्रृंगार के मुधुर चित्र तो यत्र-तत्र-सर्वत्र हैं ही, वियोग के मार्मिक चित्रों की भी उनके काव्य में कमी नहीं है।"[९] तो साथ ही वे यह भी कहते है कि "देव ने भक्ति-ज्ञान-वैराग्य आदि आध्यात्मिक विषयो का अच्छा वर्णन किया है।"[१०] यहाँ कवि देव की वैराग्यानुभूति को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं - निर्वेद, दार्शनिकता और धार्मिक एवं नैतिक विचार सम्बन्धी पद। **(अ) निर्वेद के रूप में :**

वैराग्यानुभूति के निरूपण को काव्य-शास्त्र की दृष्टि से शान्तरस के अन्तर्गत माना जाता है। जिसका स्थायी भाव ही निर्वेद है। कवि देव शरीर की क्षणभंगुरता जैसे भाव को शांतरस के रूप में प्रतिपादित करने में अत्यंत सफल रहे हैं। महाकवि देव ने तिजारती बनिये का गौन लादकर हाट में ले जाने और संध्या होते ही हाट या पैठ की बात की बात में उठ जाने का रुपक बाँधा है। अनेक ग्रामों के बीच किसी एक बड़े ग्राम या कस्बे में जहाँ सप्ताह में एक या दो दिन हाट लगती है वहाँ का आँखो देखा हाल जाननेवाला ही इस पद में कही बात का पूरा-पूरा बोध कर सकेगा। लिखा है....

"आवतु आयु को धौस अथ्यौत गए रवि तौ अदियारीए एहै।
दाम खरे दै खरीदु खरो गुरू मोह की गौनी न फेरि बिकैहै।।
'देव' छितीस की छाप बिना जमराज जगाती महादुख दैहै।
जात उठी पुर देह की पैंठ अरे बनिये बनिये नहिं रैहै।।"[११]

अर्थात् दिनभर धीरे-धीरे हाट यानी पैंठ लगती है, एक साथ नहीं। खूब क्रय विक्रय होता है, भारी चहल-पहल दिखती है किन्तु सूर्यास्त होने के कुछ पूर्व ही जिस जल्दी से सौदागर, बीसाती, साग-भाजीवाले, हलवाई सब के सब कुछ क्षणों में ही अपना-अपना माल लेफर चल देते हैं और कुछ मिनटों में ही वहां कुछ नहीं रहता, इसे देखकर सचमुच विस्मय होता है। इस दृश्य की समता कवि ने मानवदेह की पैंठ से की है। मानय बनिये की भाँति है। उसीको सम्बोधन करके उसीसे कहा जा रहा है कि 'अरे बनिये बनिये नहि रे है' अर्थात् सदा के लिए तेरी यह स्थिति नहीं बनी रहनेवाली। तू देख रहा है कि तेरी आयु का दिवस अस्त होता जा रहा है। दिन का अस्त हो जाना सूर्य के अस्त होने पर दिन के समाप्त होने को कहा है और तु यह भी जानता ही है कि सूर्यास्त होने पर अंधकार ही आनेवाला होता है। इसलिए खरे दाम देकर खरा ज्ञान का गुरु (गुड) खरीद लो और अविलम्ब मोह से

ही ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष मार्ग मिला तो मिल गया फिर कदापि नहीं। इस प्रकार यहाँ निर्वेद का श्रेष्ठ उदाहरण मिलता है।

(ब) दार्शनिकता :

कवि देव ने अपनी वैराग्यानुभूति को दार्शनिक चिंतन के माध्यम से भी व्यक्त की है। माया-प्रपंच-नाटक में कवि देव ने माया के व्यापक प्रभाव का निरूपण करते हुए बताया है कि “यह माया एक पुरुष पुरातन, दो अश्विनीकुमार, तीन दानव, चार युग, पंचभूत, छ ऋतु, सात सिन्धु, आठ वसु, नव ग्रह, दस दिशा, ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, तेरह चन्द्रमा, चौदह भुवन आदि सभी को अपने वश में किए हुए है। अत: माया की शक्ति असीम है, अनन्त है और उसका वैभव भी अपरिमेय है।"[१२] तो साथ-साथ कवि देव ने सम्पूर्ण सौंन्दर्यमंडित जीवन की क्षणभंगुरता को भी यहाँ अभिव्यक्त किया है,

“वाग्यो बन्यो जरतार को तामहि, ओस को हार तन्यो मकरीने।
पानी में पाहन पोत चल्यो चढि, कागद की छतुरी सिर दीने।
कांख में बाँधि के पांख पतंग के, देव सुसंग पतंग को लीने।
मोम के मंदिर माखन को मुनि, बैठ्यो हुतासन आसन कीने।"[१३]

अर्थात् मनुष्य शरीर की रचना जरतारी के झीने वस्त्र की भाँति विधाता ने की है। इसकी समता मकडी की जाल के साथ की जा सकती है। मकडी की जाल के समान यह शरीर है। यह मकडी झिने रंग के धागों और ओस बिंदुओ जैसे क्षणभंगुर जीवन को बुनती है। माया से अंध मनुष्य घोर वृष्टि में कागज की छतरी लगाकर पत्थर की नांव में उफनती नदी को पार करना चाहता है। यही उसका मोह, अज्ञान, मिथ्याभ्रम है। वह अज्ञानी राम-नाम रुपी नौका और सत्य की छतरी का उपयोग न कर मायाजन्य अज्ञान के पथ पर विनाश की ओर अग्रसर होता है। वह कैसा मूर्ख है कि पतिंगो के पंखों को अगल-बगल खोंसकर उडकर आकाश में सूर्य का साथी बनना चाहता है। वह यह कभी नहीं जान पाता कि उसका नश्वर शरीर मोम के बने घर जैसा है जिसमें मन रूपी मक्खन का मुनि काम-क्रोधादि के आग्नेय आसन पर बिराजमान हो इस मोम के शरीर को पिघला रहा है। इस प्रकार कवि ने यहाँ माया रूपी मिथ्या सत्य को अंगीकार न करने की चेतावनी दी है।

(क) धार्मिक एवं नैतिक विचार :

कवि देव ने वैराग्यानुभूति के अंतर्गत धार्मिक एवं नैतिक विचारों की अभिव्यक्ति की है। “कवि देव वैसे तो राधा-कृष्ण के उपासक थे किन्तु उनकी कविता में राम सीता, शिव-पार्वती, सरस्वती-दुर्गा आदि के प्रति भी गहन श्रद्धा एवं अनहद आस्था की अभिव्यंजना हुई है। इस दृष्टि से वे भी सभी देवी-देवताओं का आदर करते थे और सभी रुपों को एक ही विराट ब्रह्म के रुप मानकर अद्वैतवाद के अनुयायी थे"[१४] तो साथ-साथ कवि ने जीवन में नैतिकता को भी विशेष महत्व दिया है जिसके अंतर्गत निरभिमानता, सुशीलता, विनम्रता, मधुरवाणी, दया-सेवा परोपकार जैसे गुणों का समर्थन किया है,

"हे अभिमान तजै सनमान वृथा अभिमान को मान बहैये।
देव दया करै सेवक जानि, सुशील सुभाय सुलोनी लहैये।
को सुनिकै बिन मोल बिकाय न बोलन को कोई मोल न हैये।
पैये असीस नचैये जो सीस लची रहिये तब ऊँची कहैये।"[१५]

अर्थात् अभिमान की गंध भी न आए एसी वाणी बोलनेवाले का ही सम्मान होता है। अतः व्यर्थ या मिथ्याभिमान को बहा देना चाहिए। अपने को समस्त चराचर का सेवक मानकर जो बोलता है उसीकी वाणी शील से युक्त स्वाभाविक रूप से मृदु मधुर और आकर्षक होती है। एसी वाणी सुनकर कौन बिन मोल नहीं बिक जाता? इसके साथ यदि शील और नम्रता से कहीं सिर नमाया तो फिर 'आयुर्विधायशोबलं' सभी आशीर्वाद में मिल जायेंगे।

इतना ही नहीं, कवि देव ने बाह्याडंबरों पर विशेष प्रहार भी किये हैं। उन्होंने अंतःकरण की शुद्धता पर विश्वास करते हुए लिखा है,

"कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा में न,
पोथी में न, पाथ में न, साथ की बसिती मै न।
जप मैं न, मुंडन मैं न, तिलक त्रिपुंडन मैं न,
नदी-कूप-कुंडन अन्हान दान रीति मैं न,
पीठ मरु-मंडल मैं न, कुंडल कमंडल मैं न।।
माला-दंड में न, देव देहरे की भीति में
आपुही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो
पाइये प्रगट प्रमेसुर प्रतीति मै।"[१६]

तात्पर्य यह है कि कथा-वार्ता, गुदडी-धारण, तीर्थाटन, पोथी-यात्रा के पाठ, तीर्थ जल, जोगी- जतियों का साथ, जप, मुंडन, तिलक, छापा, नदी, कुआँ, कुंड में स्नान, दान-दक्षिणा, भस्म रमाना, कानों में कुन्डल, हाथमें कमंडल, गले में माला, हाथ में दण्ड लेना, देवी-देवताओं के मन्दिरों की चहारदिवारी में पड़े रहना आदि सभी बातों में ईश्वर की स्थिति नहीं मानते। वे डंके की चोट पर कहते हैं कि यह महासागर के समान अनन्त और अपार प्रभुपात्र हृदय की आस्था या प्रतीति से ही प्राप्त हो सकता है। यहाँ कवि देव ने बाह्याचार को केवल बाह्याडम्बर माना है।

इस प्रकार कवि देव की वैराग्यानुभूति की अभिव्यक्ति भी सूक्ष्मता एवं गंभीरता से हुई है। क्योंकि इन सबके मूल में उनकी भक्तिभावना रही है। उनकी भक्तिभावना का पद भी यहाँ दृष्टाव्य है, -

“प्यास न भूख, न भूषन की सुधि, भाव सुभूषन सों उपजावे,
देव एकंतकि कंतहि के गुन गावति नाचति नेह सजावै।
प्रेमभरी पुलकै मलकै उर व्याकुल के कुल लोक लजावै
ले परबी परबीन गनेकर बीन लिए परबीन बजै।"[१७]

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आचार्य कवि देव मूलतः श्रृंगारिक कवि रहे हैं। उन्होंने अपने काव्य में श्रृंगार को ही प्राधान्य दिया है किन्तु उन्होंने मूल रूप से अनुराग और कामवासना को भिन्न-भिन्न माना है। राग या काम की जब अतिशयता हो जाती है तो वह विषय-भोगों की और उन्मुख होता है और अतिशय विषय-भोगों से ऊबकर मनुष्य निर्वेद, तत्वचिंतन और धर्म-नीति की और उन्मुख होता है। कवि देव ने भी अपने काव्य में राग और वैराग्य की अभिव्यक्ति बडी ही सुंदरता और सूक्ष्मता से की है जो सर्वथा उचित है।

संदर्भ सूचि

(१) प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य, संपा. डॉ. वीरेन्द्रनारायणसिंह, पृ. १०९
(२) देव की दीपशिखा, विधानिवास मिश्र, शिवदतचतुर्वेदी, पृ. ४५
(३) वही, पृ. ५६
(४) प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य, संपा. डॉ. विरेन्द्रनारायणसिंह, पृ. ११२
(५) देव की दीपशिखा, विधानिवास मिश्र, शिवदतचतुर्वेदी पृ. ४२
(६) प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य, संपा. डॉ. विरेन्द्रनारायणसिंह, पृ. १११
(७) वही, पृ. ११०
(८) वही|
(९) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, बाबु गुलाबराय, पृ. ९२

(१०) वही, पृ. ९४

(११) प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य, संपा. डॉ. विरेन्द्रनारयाणसिंह, पृ. १०९

(१२) हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सैना, पृ. ३७१

(१३) प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य, संपा. डॉ. विरेन्द्रनारायणसिंह, पृ. १०९

(१४) हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सैना, पृ. ३७२

(१५) देव की दीपशिखा, विधानिवास मिश्र, शिवदतचतुर्वेदी, पृ. ६४

(१६) वही, पृ. ६५

(१७) प्राचीन और मध्यकालीन हिन्दी काव्य, डॉ. विरेन्द्रनारायणसिंह, पृ. १०९